नाकोहस

पुरुषोत्तम अग्रवाल

नाकोहस

सपने में वह गली थी, जहाँ बचपन बीता था। सड़क से शुरू हो कर गली, चंद कदम चलने के बाद चौक पर पहुँचती थी, जहाँ मोहल्ले का घूरा था और जहाँ होली जला करती थी। यहाँ से तीन दिशाओं की ओर सँकरी गलियाँ जाती थीं। सामने की ओर जाने वाली गली में आगे चल कर एक और चौक आता था, जहाँ मंदिर और मजार का वह संयुक्त संस्करण था, जिससे वह गली अपना नाम अर्जित करती थी। सुकेत ने देखा, उस गली से एक मगरमच्छ आ रहा है, रेंगता हुआ, दुम इत्मीनान से मटकाता

हुआ, गली की छाती पर मठलता हुआ, आता है घूरे वाले चौक तक। अरे, सुकेत पहली बार देखता है कि यहाँ एक हाथी लेटा हुआ है, मगरमच्छ हाथी की एक टाँग चबाना शुरू कर देता है, हाथी छटपटाता है, लेकिन जैसे जमीन से चिपका दिया गया है, केवल चीख सकता है, अपनी जगह से हिल नहीं सकता। इसी बीच दूसरी गली से एक और मगरमच्छ आता है, हाथी की दूसरी टाँग पर शुरू हो जाता है। हाथी की दर्द और दुख से भरी चीखें जारी हैं, वह शायद वैकुंठवासी नारायण को ही पुकार रहा है, जैसे पुराण-कथा में पुकार रहा था, किंतु या तो चीखें वैकुंठ तक पहुँच नहीं रहीं, या नारायण को अब फुर्सत नहीं रही।

जिंदगी हस्ब-मामूल चल रही है। वाटरकर साहब काली टोपी, लाल टाई लगाए साइकिल पर दफ्तर रवाना... त्रिवेदी जी अपनी मोटर-साइकिल पर। सब्जी वाला ठेला लेकर आया है, उसने हाथी और उसे भंभोड़ते मगरमच्छों से बस जरा सा बचाकर ठेला लगा दिया है, आवाज लगा रहा है... 'कद्दू ले लो, भिंडी ले लो, लाल-लाल टमाटर...' गृहणियाँ ठेले की तरफ बढ़ रही हैं, मगरमच्छ हाथी को चबा रहे हैं... हाथी की चिंघाड़ें करुण रुदन में बदल रही हैं, धीमी हो रही हैं, जमीन पर चिपकी देह में जो थोड़ी-बहुत हलचल थी, वह कम से कमतर होती जा रही है... आँखें आसमान बैकुंठ की ओर तकते तकते अब अपनी जगह से लुढ़कती जा रही हैं... कहीं नहीं दिख रहे गरुड़ासीन, चतुर्भुज नारायण... सुकेत खुद हाथी की ओर से प्रार्थना कर रहा है कि गरुड़ासीन नारायण नहीं तो महिषासीन यम ही आ जाएँ... दोनों में से कोई न हाथी पर कान दे रहा है, और न सुकेत पर... हाथी की चिंघाड़-चीत्कारें बस शून्य में जा रही हैं, वापस आकर दर्द की लहरों का रूप लेती उसी की देह में व्याप रही हैं, उन्हें न वैकुंठ लोक के नारायण सुन रहे हैं, ना यमलोक के देवता और ना भूलोक के नर-नारी...

सपने के अक्स पसीने की बूँदों में ढलकर जगार तक चले आए थे, स्मृति में बस गए थे। स्मृति ताकत भी थी, कमजोरी भी। बचपन में उसे पींपनी-फुग्गे वाले के खिलौनों में सबसे ज्यादा चाव चूड़ियों के टुकड़ों से बनाए गए कैलिडोस्कोप का था। वह न जाने कितनी-कितनी देर गत्ते के उस छोटे से सिलेंडर को आँख से चिपका कर घुमाता, दूसरे सिरे पर बनते, पल-पल शक्ल बदलते, रंग-बिरंगे आकारों को निहारता रहता था। बचपन से इतनी दूर, आज भी मन में एक दूसरे से जुड़ी-अनजुड़ी हजारों यादें चूड़ियों

के उन टुकड़ों जैसी अनगिनत शक्लें बनाती रहती थीं। फर्क यह था कि गत्ते के कैलिडोस्कोप में चूड़ियों के टुकड़े मनमोहक आकारों में ढलते थे, यादों के कैलिडोस्कोप में बनने वाले ज्यादातर आकार या तो भरमाते थे, या डराते थे। मगरमच्छों द्वारा भंभोड़े जा रहे हाथी का अक्स आज भी देह को पसीने से भर देता था। वह नहीं भूल पाया था कि परंपरा में हाथी शरीर-बल के साथ बुद्धि-बल के लिए भी अभिनंदित प्राणी है। वह नहीं भूल पाया था, गजोद्धार की, तथा दीगर कथाएँ। यह कथा-स्मृति सपने के हाथी की बेबसी को, उसकी दुचली-कुचली हालत को, नर-नारायण और यम की बेरुखी को और गाढ़े दुख में रंग देती थी। हालाँकि, सुकेत जानता था कि हमेशा यादों में डूबे रहना व्यक्ति और समाज के बचपने का लक्षण है, कहता भी था 'यार, बहुत ज्यादा अतीत घुसा हुआ है हमारी चेतना में... वी हैव टू मच ऑफ हिस्ट्री... संतुलन होना चाहिए...'

संतुलन? इस समय, कुछ लोग वर्तमान को अतीत के हिसाब-किताब बराबर करने वाला अखाड़ा समझ रहे थे, तो कुछ वर्तमान के जादुई गलीचे पर सवार ऐयाशी की हवा में उड़ानें भर रहे थे। जिंदगी की चाल भी बहुत तेज-रफ्तार थी, क्या घर में, क्या सड़क पर, हर जगह हर आदमी न जाने कहाँ फौरन से पेश्तर पहुँच जाने की जल्दी में था। तेज-रफ्तार वक्त में सुकेत और उसके जैसे लोग बीते वक्त में कहीं जमे रह गए फॉसिल थे, ऐसे पुरालेख थे, जिन्हें हर कोई कोसता था कि दफ्तरों में, गलियारों, दुनिया में खामखाह जगह घेरे हुए हैं।

यह मगरमच्छों द्वारा भंभोड़े जा रहे हाथी की करुण चिंघाड़ के साथ टूटी नींद की आधी रात थी, देह को पसीने से भिगोती जगार के साथ शुरू हुई आधी रात...

'चलो...'

अरे, ये तो वही बलिष्ठ गण हैं, जो कभी मोहल्ले में दिखते हैं, कभी टीवी के परदे पर। कभी किसी फिल्म-शो में पत्थर फेंकते नजर आते हैं, कभी पार्क में बैठे नौजवान जोड़ों को सताते... कभी किसी साहित्योत्सव में किसी लेखक के आने की संभावना भर से वहाँ नमाज पढ़ कर अपनी ताकत दिखाते, कभी किसी पेंटर के देशनिकाले का उत्सव मनाते... कभी लड़कियों को रेस्तराँ से मार-पीट कर भगाते, कभी माथे पर सिंदूर लगा

लेने वाली लड़कियों के विरुद्ध मुहिम चलाते, कभी किसी फिल्म पर रोक लगाने को सामाजिक न्याय का प्रमाण बताते, कभी किसी लेखिका को धर्मगुरुओं के सामने घुटने टेकने का आदेश देकर अपनी धर्मनिरपेक्षता साबित करते... हर तरफ आहत भावनाओं का बोल-बाला था...

एक बार खुर्शीद ने कहा भी था, 'अमाँ, यह ससुरी धर्मनिरपेक्षता तो अपने देश में आहत भावनाओं की एंबुलेंस बनती जा रही है...'

'और अक्ल की बात करने वालों की मुर्दागाड़ी...' रघु ने टुकड़ा जड़ा था। रघु तो अपने नाम से ही भावनाएँ आहत करने का अपराधी था, क्योंकि 'यह दुष्ट ईसाई होकर भी हिंदू नाम धारण करता है, सो भी भगवान राम के पूर्वपुरुष का'। रघु क्या बताता कि उसके ईसाई पिता को हिंदू परंपराओं की कितनी भावपूर्ण जानकारी थी, रघु के चरित्र से वे कितने प्रभावित थे, अपने बेटे का नाम रघु रख कर कितना सुख अनुभव करते थे... बताने से होना भी क्या था?

सुकेत को याद था कि बचपन के दिनों में उस उनींदे नगर में भी ऐसे नमूने थे, लेकिन उपेक्षित... आजकल के मुहाविरे में, 'हाशिए पर'। लोग उनकी नैतिक चिंतावली सुन भी लेते थे, और हँस कर टाल भी देते थे। लेकिन, टीवी की ब्रेकिंग न्यूज के इन दिनों में ये सारे देश में ग्राउंड-ब्रेकिंग रफ्तार से बढ़ते ही चले जा रहे थे। टीवी चैनल ऐसे नमूनों को जन्म देने वाली जच्चाओं की भूमिका निभा रहे थे, और सुधी विमर्शकार दाइयों की। लेकिन, अपनी जच्चाओं और दाइयों को छोड़ ये नैतिक नौनिहाल मेरे घर में कैसे घुस आए? कौन हैं ये लोग, गुंडे या यमदूत? ले कहाँ जा रहे हैं? यमलोक?

यमदूत आत्मा को पता नहीं किस वाहन में ले जाते हैं। सुकेत को तो कार में उन्हीं जानी-पहचानी सड़कों से सशरीर ले जाया रहा था। बड़े-बड़े होर्डिंगों पर, फ्लाई-ओवरों और अंडर-पासों की दीवारों पर अजीब से नारे, अजीब से ऐलान चमकते दिख रहे थे। रास्ते में पड़ने वाले अँधेरे टुकड़ों में भी ये ऐलानफ्लोरसेंट रंगों से लिखे हुए थे - 'नाश हो इतिहास का', 'दस्तावेजों को जला दो, मिटा दो', 'कला वही जो दिल बहलाए', 'साहित्य वही जो हम लिखवाएँ' ...

हर ऐलान के नीचे एक लाइन जरूर लिखी थी, कहीं-कहीं वह लाइन ही मुख्य ऐलान थी - 'हर सच बस गप है, सबसे सच्ची हमारी गप है' ...यह लाइन हर जगह अंग्रेजी में भी लिखी थी। आखिर मूल लाइन तो इस वक्त, यहीं क्यों, हर जगह अंग्रेजी से ही आ रही थी, इंग्लैंड वाली नहीं, अमेरिका वाली अंग्रेजी से - 'ऑल ट्रूथ इज फिक्शन, अवर फिक्शन इज दि ट्रूएस्ट वन'...

इतनी चमक थी सड़क पर कि अँधेरे टुकड़े भी स्याह चमक में नहाए से लग रहे थे। इतनी रफ्तार थी कि सुकेत को ले जा रही कार के साथ सड़क भी तेजी से दौड़ती लग रही थी। तेज-रफ्तार ट्रैफिक के साथ ही ताल दे रही थी कार के भीतर और बाहर हर तरफ गूँजते गाने की रफ्तार। उसी तेज-तर्रार अंदाज का था गाना जैसे सुकेत ने दो-एक बार मॉल्स में या नौजवानों के पसंदीदा हैंग-आउट्स में सुने थे -

'अक्कड़-बक्कड़ बंबे बौ, अस्सी नब्बे, पूरे सौ

सौ में लगा धागा / विकास निकल कर भागा /

इसके संग-संग तू भी दौड़ / बाकी सबको पीछे छोड़

बुद्धि को तू रख पकड़ / मुट्ठी में कसके जकड़

जो न माने तेरी बात, खुपड़िया उसकी फौरन फोड़

बाकी सबको पीछे छोड़

बम चिक बम चिक बम चिक...'

सुकेत के आस-पास बैठे दोनों बलिष्ठ उसके कंधों पर हथेलियाँ ठोकते हुए टेक में टेक मिला रहे थे - 'खुपड़िया उसकी फौरन फोड़ / बाकी सबको पीछे छोड़... बम चिक बम चिक बम चिक'। सुकेत की चिढ़ भरी निगाहों या अपने शरीर को सिकोड़ने का उन पर कतई कोई असर नहीं पड़ रहा था।

जहाँ सुकेत को लाया गया, वह कोई थाना नहीं, कई मंजिलों वाली एपार्टमेंट टावर थी। जिस फ्लैट में उसे ले गए, उसे देख कर लगता नहीं था कि अंदर इतनी ऊँची दीवारों

वाला, इतना बड़ा गोल कमरा भी हो सकता है। सामान्य सा घर, सामान्य सा दरवाजा... कदम रखने के पल तक सुकेत किसी सामान्य ड्राइंग-रूम में ही घुसने की उम्मीद कर रहा था, लेकिन दरवाजा खुला डरावनी विशालता से भरे इस इस गोल, नीम-अँधेरे कमरे में।

रघु और खुर्शीद कमरे में पहले से मौजूद थे, या शायद उसी पल वे भी कमरे में लाए गए, जिस पल सुकेत... लेकिन किस दरवाजे से? सुकेत ने पूछना चाहा, असंभव... उसने सुनना चाहा नामुमकिन... तीनों दोस्त एक साथ एक छत के तले... लेकिन बोलने-सुनने से वंचित... उस चिकनी दीवारों, चिकने फर्श वाले गोलाकार के अलग अलग बिंदुओं पर ये तीन दोस्त अनबोले, अनसुने खड़े हैं, जिस सर्वव्यापी बम-चिक शोर से गुजर कर सुकेत यहाँ आया था, उसने यहाँ दीवारों से उधार लेकर चिकना सन्नाटा पहन लिया था। तीनों अपनी अपनी जगह इंतजार कर रहे थे, ना जाने किस बात का, किस घटना का, किस इनसान का...

सुकेत को एकाएक लगा जैसे कोई लंबा गलियारा साँप की सी कुंडली मार कर गोलाकार हो गया है। यह अहसास होते ही वह चिकनी दीवार से कुछ इंच आगे सरक गया, दीवार उसे साँप की देह जैसी लगने लगी थी, सुकेत ने कभी साँप की देह छुई नहीं थी,उस छुअन की कल्पना तक उसे डरावनी भी लगती था, घिनौनी भी... वह सर्प-देह के चंगुल में खड़ा है, यह अहसास ही सुकेत की आत्मा के रेशे रेशे में डर और बेबसी भरे दे रहा था... मन को समझाने के लिए वह बताने लगा खुद को - नहीं यह साँप की देह नहीं, कोई बहुत लंबी, बल्कि अनंत में चली जा रही सुरंग है जो गोल गोल घूम रही है, घूमते घूमते थक-थक गई है, गोल कमरे का रूप लेकर सुस्ता रही है...

कमरे के बीचों-बीच यह मंच एकाएक कहाँ से आ गया? शायद मैंने ही ध्यान नहीं दिया... मंच भी है, उस पर मेज भी... मेज के पीछे कुर्सी और कुर्सी पर सिर्फ एक आवाज...

'वेलकम, सुस्वागतम... नाकोहस के इस फ्रेंडली इंटरएक्शन - मित्रतापूर्ण वार्ता-सत्र - में आप तीनों बुद्धिजीवियों का स्वागत है...'

शब्द स्वागत के, लेकिन 'बुद्धिजीवी' कहते समय स्वर में खिल्ली... तीनों को इस पाखंड पर चिढ़ हुई। 'मैत्रीपूर्ण वार्ता-सत्र' के लिए किसी को आधी रात उठवा नहीं लिया जाता। डरावनी सर्प-देह की कुंडली में फँसा कर नहीं रखा जाता। और, यह नाकोहस है क्या बला?

'चिंता न करें, आप लोगों को यहाँ आने का कष्ट इसीलिए दिया गया है कि आपके सारे सवालों के आखिरी जवाब दिए जा सकें, आप लोग सवाल-जवाब की बेवकूफी से आखिरी बार छुट्टी पाकर भले लोगों की तरह जीवन के आखिरी दिन तक चैन से जी सकें...'

'अंतर्यामी का दरबार है क्या यार' ...सुकेत ने सोचा, अंतर्यामी आवाज फिर से बोल पड़े इसके पहले ही उसने सवाल दाग दिया, 'चक्कर क्या है... क्या जुर्म है हम लोगों का - जो पुलिस, नहीं पुलिस नहीं, गुंडों के जरिए...'

'इतनी हड़बड़ी से कैसे काम चलेगा?' आवाज एक चेहरे में बदल रही थी। 'आश्चर्य लोक में एलिस' के चेशायर बिल्ले की तरह धीरे-धीरे चेहरे का आकार खुल रहा था, लेकिन बिल्ले की नहीं, गिरगिट की शक्ल। उस चेहरे को खुलते देख, सुकेत को अपने सपने के मगरमच्छ याद आने लगे। वैसी ही लंबी सी थूथन खुल रही थी, लेकिन डरावने दाँतों की कतार की जगह लपलपाती जीभ। देह शायद इनसान की ही थी, थूथन बिल्कुल गिरगिट की, जिस पर चेशायर बिल्ले जैसी दोस्ताना शरारत नहीं, सारे सवालों का हल हासिल कर चुकी चेतना की चिकनी कठोरता थी, अटूट आत्मविश्वास की चमक थी, और आवाज में ताकत का ठहराव, 'आप लोगों को यहाँ पुलिस नहीं लेकर आई है, और गुंडे कह कर, आप जिनकी भावनाएँ आहत कर रहे हैं, वे असल में बौनैसर हैं...'

'बौनेसर या बाउंसर? जो सर लोग हमें यहाँ लेकर आए हैं, देह से तो बौने के बजाय बाउंसर ही लग रहे थे, हाँ, बुद्धि से...'

'इतना अहंकार उचित नहीं, मान्यवर। अहसान मानिए कि आपकी लद्धड़ बुद्धि फास्ट डेवलपमेंट के इस तेज-रफ्तार जमाने में अब तक बर्दाश्त की गई है... बाउंसर

नहीं, बौनैसर माने बौद्धिक नैतिक समाज रक्षक, संक्षेप में बौनैसर... यू सी, हम कोई बुद्धि-विरोधी नहीं, बल्कि बुद्धि के रक्षक हैं... लेकिन यह अब नहीं चलेगा कि स्वयं को बुद्धिजीवी कहने वाले भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली समाजद्रोही, राष्ट्रविरोधी हरकतें करते रहें... बुद्धि की मनमानी बहुत हो ली, बुद्धिजीवियों के सम्मान का तमाशा बहुत हो चुका, अब जरूरत है, अनुशासन की... भावनाओं की रक्षा की, इसीलिए बौद्धिक नैतिक समाज रक्षक - बौनैसर - समाज की रक्षा तो करते ही हैं, यह ध्यान भी रखते हैं कि बौद्धिक कर्म अनुशासन-हीनता का रास्ता न पकड़ ले... याद रहे, इन समाज-रक्षकों के बारे में बकवास करना दंडनीय अपराध है... वैसे, यह अपमानजनक टिप्पणी भी तो आपने ही की थी ना सुकेत सर... कुछ ही दिन पहले कि इन दिनों इमारतें ऊँची होती जा रही हैं, और मनुष्य बौने...'

'इसमें अपमानजनक क्या है? किसका अपमान किया मैंने?'

'सारे मनुष्यों को बौने कहा, और पूछ रहे हैं कि अपमान किसका किया...'

'यों तो मैंने अपना भी अपमान किया...'

'आप अपना अपमान नहीं कर सकते, जैसे आत्महत्या नहीं कर सकते', अधिकारी की आवाज का ठंडापन बर्फ का सा था, हाँ थूथन लाल हो गई थी, 'आत्म-हत्या हो या आत्म-अपमान... आप ही कर लेंगे तो हम क्या करेंगे? हमारा काम हमें करने दीजिए...'

सुकेत को एकाएक याद आया, बचपन में, घर में फ्रिज नहीं था; गर्मी में मुन्ना बर्फ वाले से किलो-दो-किलो बर्फ लाने आम तौर से वही जाता था। मुन्ना सुए और हथौड़े की सहायता से बड़ी सी सिल्ली में से बर्फ का टुकड़ा तोड़ कर तराजू पर रखता था। क्या होगा सुए और हथौड़े की चोट का नतीजा... बर्फीली आवाज की सिल्ली में धकेले जा रहे सुकेत की हिम्मत नहीं हुई, कल्पना करने की।

'तो फिर हमारा काम क्या है?' सुकेत चौंका, यह रघु की आवाज थी, अभी कुछ ही देर पहले तो हम एक दूसरे की आवाज नहीं सुन पा रहे थे, अब...

अंतर्यामी फिर से बोल पड़े, 'यह एक छोटा सा डिमांस्ट्रेशन था, सुकेत जी, आप लोगों को समझाने के लिए कि आपकी बोली-बानी, आपके कान-जबान कितने आपके रह गए हैं, और कितने हमारे हो गए हैं...', सुकेत को लगा कि वह उस आवाज को छू सकता है, यह छुअन भी ऐन वैसी ही, जैसी दीवार की छुअन लग रही थी... सर्पदेह की सी। सुकेत को अपने चेहरे पर, सारी देह पर नीले-काले धब्बे उभरते लगे। उसने हड़बड़ा कर हथेलियों, कलाइयों पर निगाह डाली। कोई धब्बे नहीं थे, लेकिन उसी पल सुकेत अपनी रगों में किसी को दुम मटकाता, मठलता हुआ महसूस कर रहा था... उसकी चीख निकल गई, 'मेरे भीतर यह मगरमच्छ...'

अंतर्यामी ने ध्यान नहीं दिया, रघु और खुर्शीद ने भी नहीं। चीख गले से निकली भी थी, या भीतर ही? अधिकारी रघु से मुखातिब था... 'आपका काम है कमाना, खाना, सोना, रोना और मस्त रहना। यार, कितने तो तरीके हैं इन्फोटेनमेंट के... मन करे तो दूसरों के रोने का रस लो, मन करे तो खुद ही टीवी पर रो कर दिखा दो, भगवान के नाम पर रो लो, देश के नाम पर रो लो... टीवी पर रोने पर कोई रोक नहीं, हाँ, एकांत में रोने के चक्कर में मत पड़ना। एकांत जैसी समाजद्रोही हरकतों को काफी हद तक तो टीवी ने कम कर ही दिया है... बाकी काम जारी है... लोगों को सिखाने के लिए, उनके सीखने को 'मॉनिटर' करने के लिए राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण आयोग, राष्ट्रीय अनुशासन संस्थान, विवेक-पुनर्निर्माण समिति आदि का गठन किया गया ही है... हम नाकोहस वालों का अपना मैंडेट है... कुल मिला कर टारगेट यह - कोई भी नागरिक किसी भी हालत में अपने चरित्र को, दूसरों की भावनाओं को चोट ना पहुँचा पाए। एकांत खतरनाक है, एकांत में सवाल पैदा होते हैं, सवालों से निजी दुख और सामाजिक उत्पात जन्म लेते हैं, सो... क्या कहते हैं आप इंटेलेक्चुअल लोग उसे... हाँ, कैथारसिस, विरेचन... मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी... सारे समाज के लिए रंग-बिरंगा, सुंदर कैथार्सिस मुहैया कराने के लिए तो छोटे से शुक्रिया के मुस्तहक तो हम हैं ही... क्या ख्याल है जनाब खुर्शीद साहब...'

'मेरे नाम की वजह से उर्दुआने की जरूरत तो नहीं थी, बहरहाल शुक्रिया' खुर्शीद ने अपने जाने-पहचाने अंदाज में कहा, 'किंतु मेरा निवेदन भी यही है, कृपया बताएँ... हम यदि अपना स्वयं का अपमान तक नहीं कर सकते तो मनुष्य योनि का करें क्या?'

अंतर्यामी गिरगिट एकाएक सोच में डूबा लगने लगा। क्या उसे याद आ गया था कि शक्ल गिरगिट की हो, ड्यूटी मगरमच्छ की, लेकिन वह स्वयं भी अंततः मनुष्य था...

कमरे में जाने कितनी देर सन्नाटा गूँजता रहा। इन तीनों की आवाज और हरकत फिर से स्थगित कर दी गई थी। वे अपनी जगह जरा सा हिल लेने के सिवाय कुछ नहीं कर सकते थे। हाँ, चुपचाप साझा ढंग से मुस्कराना मुमकिन था... रघु और खुर्शीद की मुस्कान बता रही है कि वे भी वही सोच रहे हैं, जो सुकेत खुद सोच रहा है - यह एक सपना है, जो मैं देख रहा हूँ, बाकी दोनों मेरे सपने में हैं, बस। कुछ ही देर की बात है, नींद खुलेगी, सपना टूटेगा, और मैं बाकी दोनों को छका-छका कर बताऊँगा कि सपने में मेरे साथ उन दोनों की भी क्या दुर्गति हुई। मजे मजे में बुलाऊँगा भी कि आज रात फिर दोनों साथ-साथ चले आना मेरे सपने में...

'वैसे तो, जैसा कि आप जानते हैं, जगत ही ब्रह्म का सपना है...' गिरगिट चेहरे के रंग लाल, हरे, नीले हुए जा रहे थे, चिकनी आवाज अब लपलपाती जबान से नहीं, उस गोल कमरे का रूप ले चुकी सुरंग के, उस साँप की कुंडली के कोने कोने से आ रही थी, 'लेकिन, आप यह भी तो जानते हैं कि सपना था, यह अहसास सपने में नहीं, उसके खत्म हो जाने के बाद ही होता है... इस वक्त आप किसी सपने में नहीं, नाकोहस के मैत्रीपूर्ण वार्ता-सत्र में है... नाकोहस याने नेशनल कमीशन ऑफ हर्ट सेंटिमेंट्स - संक्षेप में नाकोहस, आप आहत भावना आयोग भी कह सकते हैं... ग़ौर करें,'नाकोहस'- इस एब्रिविएशन से यह भी मतलब निकलता है कि आप जैसे लोगों द्वारा फैलाया गया कुहासा दूर करना ही इस कमीशन का मैंडेट है... हिंदी में भी, 'आभाआ' याने बकवास के अंधकार को दूर कर, आनंद और विकास की आभा को बुलाना... आभा आ... आभा को हाँ, कुहासे को ना... नाकोहस...

'नाकोहस? आभाआ?' रघु, सुकेत और खुर्शीद ने एक दूसरे की आँखों में झाँका। आँखों के तीनों जोड़ों में एक सा अचंभा था, 'यह बक क्या रहा है, यार... ढेर सारे कमीशन हैं, रोजाना दो-चार बन जाते हैं, लेकिन ये कौन-कौन से कमीशन बखान रहा है, चरित्र-निर्माण आयोग, आहत भावना आयोग, नेशनल कमीशन ऑफ हर्ट सेंटीमेंट्स... हमें पता तक नहीं चला...'

अंतर्यामी गिरगिट-शक्ल ने फिर से जल्दी-जल्दी रंग बदले, शायद यह इन लोगों के बिगूचन पर खुशी जाहिर करने का उसका तरीका था, 'नाकोहस आपके ऊपर-नीचे-दाएँ-बायें हर तरफ है...नाकोहस आपका पर्यावरण है। समझदार लोग समझ भी गए हैं, आप जैसों को समझाने की कोशिशें भी बौनेसरों ने की तो हैं...'

बात एक तरह से सही थी, तीनों दोस्त अलग-अलग भी, और साथ-साथ भी भावनाएँ आहत करने के आरोप में गालियाँ भी झेल चुके थे, पिटाई भी। आईपीसी 153 ए और आईटी एक्ट 66 ए के केस भी तीनों पर चल ही रहे थे, लेकिन वे सब तो गुंडागर्दी और राजनैतिक बदमाशी की घटनाएँ थीं... यह बाकायदा कमीशन - नाकोहस - आभाआ...

'फैसला किया गया है कि नाकोहस को हवा में घोल दिया जाए, आभाआ की आभा को हर नागरिक के भीतर-बाहर फैला दिया जाए... मेरे प्यारे बुद्धुओं, नाकोहस तुम्हारी जानकारी में हो ना हो, इसे तुम्हारी नींद में, तुम्हारी साँस में होने की जरूरत है, तुम्हारे घर में, तुम्हारी सड़क पर होने की जरूरत है। मुझे विश्वास है कि इस मैत्रीपूर्ण वार्ता-सत्र के बाद, तुम तीनों में जरूरी सुधार आ जाएगा, नाकोहस को तुम भी अपने भीतर पाओगे और भावनाएँ आहत करने वाली पापबुद्धि को सदा के लिए बाहर निकाल फेंकोगे'।

रघु चुप नहीं रह सकता था, सुकेत को मालूम था कि वह बोलेगा जरूर। जब वह दमदमी टकसाल में, गोद में एके 47 को लाड़ से बिठाए, खालिस्तान समझा रहे खाड़कुओं के सामने चुप नहीं रहा था, तो इस इस सपने में, इस गिरगिट के सामने उसके चुप रहने की बात तो सपने में भी नहीं सोची जा सकती। लेकिन वह बोला, और अपन सुन ही नहीं पाए तो?

सुकेत की आँखें जीभ लपलपाते गिरगिट की ओर अनुरोध के साथ देखने लगीं। वह जिससे घृणा कर रहा था, उसी से अनुरोध कर रहा था कि रघु की आवाज सुनने दी जाए। रघु इस गिरगिट की ऐसी-तैसी करेगा, यह तय था, लेकिन उस ऐसी-तैसी का मजा ले पाने के लिए सुकेत निर्भर था उसी गिरगिट की मर्जी पर। उसकी मर्जी के बिना वह सुन नहीं सकता था, रघु की आवाज, जैसे कुछ देर पहले रघु और खुर्शीद सुकेत की आवाज नहीं सुन पा रहे थे...

सुकेत के मन में ऐसी घृणा और निर्भरता एक साथ होने की स्मृति अब तक नहीं थी... क्या कभी बाहर आ पाएगा वह विवशता की इस स्मृति से कि अपने रघु की नाकोहस की ऐसी-तैसी करती आवाज सुनने के लिए वह नाकोहस के ही निहौरे कर रहा है...

गिरगिट मुस्कराया, अंतर्यामी ठहरा... सुकेत और खुर्शीद सुन पा रहे थे, रघु की आवाज, 'सुनिए भाई साहब, ऐसे जादू-तमाशे हमने बचपन से देखे हैं। बड़े होकर तो हालत यह हो गई है कि...'

'होता है शबो-रोज तमाशा मेरे आगे' ...खुर्शीद ने गिरह लगाई, जैसे पचीस बरस पहले दमदमी टकसाल में लस्सी छकते, उपदेश सुनते अपन हँस-हँस कर खुद के डर को छका पा रहे थे, वैसे ही इस अजूबे को भी जिंदादिली से ही निबटा रहे हैं...

'लेकिन इस अजूबे की अपनी इजाजत से...' मगरमच्छों द्वारा भंभोड़ा जा रहा हाथी सुकेत के समूचे अस्तित्व में चिंघाड़ उठा। बल-बुद्धि से महिमामंडित वह विशाल प्राणी बेबस और लाचार था, मगरमच्छों की क्रूरता के सामने... उसकी पुकारें नारायण से दया की भीख माँग रही थीं, या देह चबाते मगरमच्छों से... मैंने तो नारायण के बारे में सोचा तक नहीं, बल्कि इस गिरगिट की ओर ही टिकाई निहौरा करती निगाह, उफ... क्या हो गया है मुझे... क्या हो रहा है हम तीनों को... मैं अकेला ही नहीं, बाकी दोनों की निगाहें भी तो मेरी ही तरह निहौरे कर रहीं हैं इस गिरगिट के... न करें तो आवाज नहीं सुन सकते, कौन जाने अगले पल देख भी न सकें एक दूसरे को...

स्मृति जा रही है पंचतंत्र की कहानी की ओर। मगरमच्छ की क्रूर मूर्खता की, बंदर की चतुराई की उस कहानी में तो बंदर बच गया था, मगरमच्छ को यकीन दिला कर कि वह अपना कलेजा पेड़ पर छुपा कर रखता है। हम उस बंदर की चतुराई से ही तो सीख रहे हैं, रणनीति के तहत निहौरे कर रहे हैं, इस घिनौने गिरगिट से, कोई बात नहीं...

मगरमच्छ मूर्ख मान गया था कि बंदर अपना स्वादिष्ट कलेजा शरीर में नहीं पेड़ की खोखल में छिपा कर रखता है, हम भी इस गिरगिट को मूर्ख बनाकर निकल जाएँगे कि, 'जी, हम तो अब भावनाएँ आहत करने वाली शरारतें घर पर छोड़ कर ही निकला करेंगे...'

गिरगिट ने नारंगी रंग लेते हुए सुकेत की ओर तिरस्कार भरी निगाह डाली, 'मेरी ही मेहरबानी से अपने दोस्त की बकवास सुन पा रहे हो, मन ही मन फिर भी हीरोपंथी झाड़ रहे हो, चाहूँ तो सुनना-बोलना तो क्या हिलना-डुलना तक इसी पल रोक सकता हूँ, याद कर रहे हो उस बदमाश बंदर को, उस बेवकूफ मगरमच्छ को... भूल जाओ यह बकवास, बस अपना सपना याद रखो, सच वही है...'

हाथी हिल नहीं सकता। नारायण को परवाह नहीं, यम को जल्दी नहीं। मगरमच्छ आश्वस्त - जीभ को गोश्त का स्वाद, कानों को क्रंदन का सुख मिलने में कोई बाधा नहीं। हाथी की विवशता, मगरमच्छों की आश्वस्ति का सच सुकेत की चेतना में बर्फ तोड़ने वाला सुआ बन कर चुभा... अंदर ही अंदर सारा खून निचुड़ सा गया, चेहरा शर्म और दर्द से बैंगनी होने लगा, गिरगिट ने तृप्ति से जीभ लपलपाई, और खुद भी बैंगनी रंग अख्तियार करते हुए सुकेत की ओर आँख मारी, 'मेरे बैंगनीपन का कारण अलग है, समझे...'

सुकेत को अपने नाम पर शर्म आने लगी, कैसा सुकेत - सूर्य - हूँ मैं कि...

'थैंक्यू खुर्शीद' रघु कह रहा था, 'मैं आपकी कोमल भावनाएँ आहत नहीं करना चाहता, लेकिन सरजी इतना तो जानते ही होंगे कि किसी भी वक्त में चालू मान्यताओं और उनसे जुड़ी भावनाओं से ही चिपका रहता तो इनसान आज भी नरबलि चढ़ा रहा होता। बात को समझिए नाकोहस साहब, कहीं न कहीं सत्य तो है ना, कुछ तो है उसकी शकल, हालाँकि उसको पूरा जान पाना किसी के लिए भी संभव नहीं है, इसीलिए तो उस पर सतत पुनर्विचार जरूरी है... दैट इज ब्लासफेमी फॉर यू... जिसके बिना इनसान आगे बढ़ ही नहीं सकता...'

'मिस्टर रघु मैं जानता हूँ कि ब्लासफेमी क्या चीज है... आपकी तरह ईसाई भले...'

'मैं ईसाई घर में जन्मा जरूर, लेकिन ईसाई हूँ नहीं...'

'आप स्वयं को ईसाई कहलाना पसंद नहीं करते, लेकिन पसंद का जमाना गया, यह पहचान का जमाना है, आप चाहें ना चाहें आपकी पहचान तो ईसाई की है, मरते दम तक रहेगी, मरने के बाद तक रहेगी... बाई दि वे, आप पर एक चार्ज यह भी है कि आप

अपनी पहचान छुपाने की कोशिश करते हैं, खैर, न जाने किस जमाने की बात आप कर रहे हैं, सत्य होता है एब्साल्यूट सत्य होता है भले ही पूरी शकल न दिखाता हो, पढ़े-लिखे हो कर ऐसी बेवकूफी की बातें...' आवाज में वह लाड़ भरी सख्ती आने लगी थी जिसका इस्तेमाल पालतू जानवरों से बात करने में किया जाता है, 'मेरे प्यारे बेवकूफो, सत्य वत्य कुछ होता नहीं, वजूद केवल ताकत का है, इतिहास में पहली बार इस व्यावहारिक सत्य को दार्शनिक रूप मिला है, अब पीछे नहीं जा सकते हम... कोई जरूरत नहीं ब्लासफेमी की, सत्य की खोज, माई फुट... सत्य है क्या? प्याज की गाँठ - छीलते जाओ, छीलते जाओ, हर परत के नीचे एक और परत, और आँखों में पनीली जलन... बहुत डेमोक्रेसी-वेमोक्रेसी बघारते हो, तुम लोग, जनता को पनीली जलन से बचाना सरकार का कर्तव्य है या नहीं ...सत्य-वत्य बहुत हो लिया अब जो भी खोज होनी है एटीएम में होनी है... एटीएम समझते हो ना?'

'यार, यह हमें इतना घामड़ समझता है... एटीएम माने ऑटोमेटिक टेलर मशीन, पॉपुलर मुहावरे में एनीटाइम मनी...'

'मैं जानता था' गिरगिट की देह ने खुशी के मारे इस बार रंग ही नहीं बदला, फुरहरी भी ली, 'जानता था मैं, पुराना इडियम घुसा पड़ा है इडियट किस्म की खोपड़ियों में, एटीएम का नया मतलब है - ऑल टेक्नॉलॉजी ऐंड मैनेजमेंट - साइंस ऐंड टेक्नालॉजी में कन्फ्यूजन की गुंजाइश है, कुछ बेवकूफ हवाई किस्म की थ्योरिटिकल रिसर्च में राष्ट्रीय संसाधन नष्ट करने लगते हैं... मैनेज करना है कि साइंटिस्ट अपने काम से काम रखें, फिजूल के पचड़ों में ना पड़ें... पॉलिसी डिसीजन स्टैटिक्स के आधार पर लिए जाने चाहिए... तुम्ही बताओ तुम्हारा महान साहित्य, महान संगीत विचार समाज के कितने फीसदी लोगों के काम का है? इन सारी चीजों को मैनेज करना है, इसलिए एटीएम - ऑल टेक्नॉलॉजी ऐंड मैनेजमेंट - इसी में रिसर्च, इसी में विकास... बंद करनी है बाकी हर बकवास... ऐंड दैट इज दि फाइनल ट्रूथ, कभी मत भूलना यह सबक - सत्य वही जो हम बतलाएँ...'

रघु, खुर्शीद और सुकेत गिरगिट की लंबी स्पीच सुनते ही रह गए, बीच में बोलना संभव कहाँ था? गिरगिट अपने मुँह का माइक ऑन करने के साथ ही इन तीनों की जबान पर ताला लगाना भूला कहाँ था? वे केवल ठंडी आवाज सुन सकते थे - 'मुझे

पता है, आप लोग सोच रहे हैं कि...,' पहली बार उस मेज से आती आवाज में बर्फ की सिल्ली की ठंडक के बजाय इनसानी शरारत सुनाई दी, 'ईसा मसीह का उदाहरण दें या नचिकेता का, उद्धरण नैयायिक उदयन का दें या इब्ने सिन्ना इज्तिहादी का, या वाल्टेयर का, या लाओत्जे का... कबीर और मीराँ के नाम तो बस आपके मुँह से अब निकले कि तब निकले... आपको लगता है कि नाकोहस अनपढ़ों का जमावड़ा है? सब मालूम है हमें... आप तीनों का लेख, 'राइट टू ब्लासफेमी' भी ध्यान से बाँचा गया है नाकोहस द्वारा, 'ब्लासफेमी याने धर्म और भगवान तक की शान में गुस्ताखी करना इनसान का अधिकार तो है ही, मानव-समाज की प्रगति की शर्त भी है...' यही फरमाते हैं ना आप लोग उस निहायत कन्फ्यूजिंग हेंस मॉरली रिपगनेंट ऐंड सोशली डेंजरेस लेख में... उस लेख के बाद हमारी कार्यवाही का कोई असर आप पर नहीं पड़ा, इसीलिए तो आपको इस खास इंटर-एक्शन में आने की जहमत दी गई है...

उस लेख के बाद नाकोहस की कार्यवाही? तीनों ने एक दूसरे की आँखों से सवाल पूछा, 'यार, यह हो क्या रहा है? जिस नाकोहस का नाम तक नहीं सुना, उसने अपने खिलाफ कार्यवाही भी कर डाली?"

'कानून की जानकारी ना होना लीगल डिफेंस नहीं होता, यह तो आप लोग नाकोहस बनने के पहले भी जानते-मानते ही आए हैं ना...' नाकोहस के गिरगिट का अंतर्यामीपन सहज लगने लगा था, जो मन में सोचते थे, उस पर गिरगिट की टिप्पणी अब तीनों में से किसी को जरा भी नहीं चौंका रही थी। गिरगिट कह रहा था, 'नाकोहस के होने से आप नावाकिफ हैं, तो नाकोहस का काम रुक थोड़े ही जाएगा... हाँ, हमारे तरीके कुछ अलग हैं, पुलिस-वुलिस से ज्यादा, हम बौद्धिक नैतिक समाज रक्षकों याने बौनेसरों पर या फिर लोगों की अपनी सद्बुद्धि पर भरोसा करते हैं... खुद दुखी, आहत और उत्पीड़ित होने का दावा करते हुए किसी की ठुकाई करना कितना मादक सुख देता है, आप क्या जानें... मैं तो... मुझे तो... आ...ह...' गिरगिट को कोई रोमांचक पल याद आ रहा था, 'मेरी भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाले, तुझे तो मैं... ओह... आ... तेरी तो मैं आह... अरे बेवकूफों तुम क्या जानो, कितना मजा है इसमें... हाय... आह ओह...'

गिरगिट उस सुख को याद कर रहा था, जो वह भावनाएँ आहत करने वालों की देहों को क्षत-विक्षत करते समय पाता था, मुँह से निकलती सीत्कारें, लंबोतरे चेहरे पर छा रही खुमारी, लपलपाती जीभ पर चमक रही तृप्ति ऐसी थी मानो वह किसी परम काम्या नारी के साथ सेक्स का सुख ले रहा हो।

सुकेत को याद आ रहा था, ब्लासफेमी वाले लेख के पहले भी, बहुत तीखी गाली-गलौज, बहुत जहरीले कटाक्ष झेले थे उसने, और रघु, खुर्शीद जैसे उसके कई दोस्तों ने। उसे अपनी वह प्रेमिका भी याद आई जो मोहब्बत की बातें ऐसे करती थी कि पचास के दशक की फिल्मों की घोर सेंटिमेंटल नायिका तक पस्त हो जाए; और कटाक्ष ऐसे करती थी, जैसे कोई तीखी छुरी त्वचा से मांस तक पहुँचाए, उसे गोल-गोल घुमाए, फिर ताजे घाव पर नमक-मिर्च बुरके...

जैसे यह गिरगिट कह रहा है, वैसे ही वह भी दावा करती थी - दोष उसी का है जिसके मांस में छुरी गपाई जा रही है, जिसके घावों पर नमक-मिर्च बुरका जा रहा है... वह तो बेचारी स्वयं अपनी भावनाओं के आहत होने से पीड़ित है... यह सब करते समय उसे सुख भी वैसा ही मिलता था, जैसे सुख की यादें इस गिरगिट के मुँह से सीत्कारें निकलवा रही हैं, इसके चेहरे पर खुमारी ला रही हैं... प्रेमिका की यह कटाक्ष-कला सुकेत ने झेली थी, उसके लिए अनुपयोगी हो जाने के बाद। सुकेत के लिए बहुत भारी और अबूझ थे वे दिन। समझ नहीं आता था कि ऐसा क्यों? आज एकाएक कौंध - कहीं वह इस गिरगिट द्वारा या इसके गिनाए अजीबोगरीब कमीशनों में से किसी के द्वारा तो तैनात नहीं की गई थी? कौन कर रहा है निजी रिश्तों और निजी पलों में ऐसी तैनाती? कौन चला रहा है आहत भावनाओं का कारोबार? किस इरादे से चला रहा है? वह स्त्री उसके जीवन में जैसे अधिकार के साथ घुसी थी, उसने सुकेत को जैसे लुभाया था... क्या किसी योजना के तहत? किसकी थी योजना? क्या अब रिश्ते भी नाकोहस जैसे कमीशनों की देखरेख में बन-बिगड़ रहे हैं?

सुकेत भीतर बीते दिनों को देख रहा था, और बाहर...

...नाकोहस हमारे सामने गिरगिट की शक्ल में खास संदेश लेकर आया है... रंग ओढ़ लो स्वयं आहत होने का, भंभोड़ डालो मगरमच्छी निर्ममता से... तीखी दंत-पंक्ति से,

जहरीली जीभ-छुरी से, लोहे की छुरी से भी, भावनाओं को आहत करने वाला अपना हर अधिकार खो चुका, मारो-पीटो, जो चाहो करो... घर फूँक दो उसका, मत देखो कि साथ में तुम्हारा घर भी जला जा रहा है... पल-पल रंग बदलते रहो... अपनी भावनाओं का खेल हो तो हर पिटाई जायज, किसी और की भावनाओं का मामला या तो प्रतिक्रियावाद या राष्ट्रद्रोह... गिरगिट-भाव और मगरमच्छ-ताव दिन-दूने रात चौगुने ढंग से समाज में न पसरा तो नाकोहस के होने का मतलब ही क्या?

ब्लासफेमी वाले लेख के बाद तीनों को कई बार पिटाई झेलनी पड़ी थी, घरों के दरवाजों पर अश्लील गालियों और भद्दे चित्रों का प्रसाद भी मिला था। अपने-अपने धर्म के नरकों में जाने के सुझाव, और स्वयं नहीं गए तो भेजने की व्यवस्था के आश्वासन भी तीनों को मिले थे... उस वक्त, समझ रहे थे कि लोग पगला गए हैं, आज मालूम पड़ रहा है कि पागलपन में पद्धति थी - मेथड इन मैडनेस। नाकोहस, आभाआ की पद्धति।

डर लगता था, साथ होते थे तो हँसी की ढाल डर के आगे अड़ा देते थे, अकेले में खुद को याद दिलाते थे, डरना इनसानी फितरत है, डर कर घर बैठ जाना, मोर्चे से भाग जाना कमजोरी। कोशिश करते थे साथ-साथ भी, अपने अपने एकांत में भी कि डर इनसानी फितरत ही रहे, भगोड़ी कायरता न बन जाए... आज जो डर सुकेत को लगने लगा था, वह और तरह का था, अपनों से कटाक्ष, गैरों से पिटाई का नहीं, नाकोहस की व्यापकता का डर... मेथड इन मैडनेस का डर... गिरगिट अधिकारी का चेहरा गायब था, मेज के ऊपर अधभर में टँगी लपलपाती जीभ ही दिखी सुकेत को... आवाज सुनाई दी, 'हम हवा में हैं, हम आवाजों में हैं, हम मुस्कानों में हैं, हम रिश्तों में हैं... कहाँ तक जानोगे कौन कौन है हमारा एजेंट - भद्दा शब्द है एजेंट - सही नाम है, बौनेसर - बौद्धिक नैतिक समाज रक्षक... वह गाना था ना तुम्हारे बचपन की किसी फिल्म में, 'जहाँ जाइएगा, हमें पाइएगा...'

याने... याने... शायद रघु भी, शायद खुर्शीद भी... क्यों नहीं... क्यों नहीं... मैं खुद क्यों नहीं... कुछ ही देर पहले मैं निहौरे करती निगाह से निहार नहीं रहा था, इस घिनौने गिरगिट को? कुछ देर पहले लग रहा था, मेरी देह पर नीले धब्बे आ रहे हैं, कहीं इस वक्त मेरी देह का रंग पीला, नारंगी या हरा तो नहीं हो रहा? सुकेत की हिम्मत नहीं हुई

अपनी हथेलियों, कलाइयों पर निगाह डालने की... सर्पदेह की जकड़ में तो वह यहाँ आते ही ले लिया गया था, अब उसे जलते तवे पर खड़े होने का भी अहसास हो रहा था... हर तरफ से तपिश की लपटें लपक रहीं थीं, कमरे की जो दीवारें उसे कुछ ही देर पहले बहुत ऊँची लगी थीं, सिकुड़ रही थी, छत धीरे-धीरे, जैसे मजा लेते हुए नीचे आ रही थी, सुकेत को गोया जिंदा चिना जा रहा था, वह चीख रहा था, पता नहीं रघु और खुर्शीद तक उसकी आवाज पहुँच रही थी या नहीं... उसने पूरी ताकत से चीख लगाई, 'छोड़ो हमें, जवाब दो, मुक्ति दो...' वाकई चीख पाया क्या वह? उसे खुद तो अपनी आवाज सुनाई दी नहीं, औरों ने क्या सुनी होगी...

यह क्या दिख रहा है मुझे... खुर्शीद अपनी जगह से हिल पा रहा है, रघु भी, अरे, मैं खुद भी... हममें से कोई भी एक-दूसरे की तरफ नहीं बढ़ रहा, हम तीनों की गति नाकोहस के गिरगिट की ओर है, हम में से हरेक उस तक बाकी दोनों से पहले पहुँचा जाना चाहता है... क्यों? आखिर क्यों? यकीनन उस की दुम पकड़ कर झटका देने के लिए, उसकी कुर्सी खींच लेने के लिए... या... या... या... इस या के आगे सोचने की हिम्मत नहीं हो रही थी, सुकेत की... ना अपने बारे में, ना बाकी दोनों के बारे में...

तीनों जोड़ी आँखों में डर का घुमावदार गलियारा था, आशंका की सुरंग थी, जो सामने खड़े इनसान को भेदती जाने कहाँ चली जा रही थी... वे तीनों एक दूसरे को देखना चाह रहे थे, देख रहे थे गिरगिट को, जो पल-पल रंग बदलता बेहद खुश लग रहा था... 'इस मैत्रीपूर्ण वार्ता-सत्र में आने के लिए आप तीनों का धन्यवाद, विदाई-भेंट के रूप में सलाह है, आप तीनों कुछ दिन आराम करेंगे, चाहें तो घर पर ही, बात ना समझ पाएँ तो शायद किसी नर्सिंग होम में... बट रेस्ट इज ए मस्ट फॉर यौर हैल्थ', मेज से उठता गिरगिट मुस्करा रहा था...

सुकेत को यकीन हो चला कि या तो सपना है या हैल्यूसिनेशन, वरना कैसे हो सकता है कि कोई सचमुच का गिरगिट सचमुच की मेज पर सचमुच का सूट पहने बैठा हो और सचमुच की हिंदी बोल रहा हो... लगता है, आज पीने-खाने में कुछ गड़बड़ की है, इसीलिए इतना डिस्टर्बिंग सपना आया है... जो गालियाँ, पिटाई खाईं, खाते ही रहते हैं, उससे इस घिनौने गिरगिट का, इसके नाकोहस का क्या लेना-देना है... मैं रौब में आ

गया हूँ, बाजीगरी तो देखो बेहूदे की, बंबइया फिल्मों के भाई लोगों की तरह स्टाइलिश धमकियाँ दे रहा है...

'सुकेतजी, बात हैल्यूसिनेशन की नहीं, भावनाओं के एसेसिनेशन की है, जो आप आगे से ना करें तो अच्छा है... बाई दि वे, कभी घाव पर चलती चींटियाँ महसूस की हैं, आपने?'

अच्छा तो धमकी का स्टैंडर्ड कुछ रचनात्मक हो रहा है... सुकेत ने रघु और खुर्शीद की ओर ताका, लेकिन उनके चेहरे सपाट थे... याने गिरगिट ने फिर उनके सुनने पर रोक लगा दी है... गिरगिट मेज से उठ खड़ा हुआ, इनसान की तरह चलने के बजाय रेंगने का फैसला किया, दरवाजे तक पहुँच कर उसने ताबड़तोड़ रंग बदले, गर्दन घुमाई, बोला, 'जिस वक्त आप मुन्ना बर्फ वाले के सुए को याद करके डर रहे थे ना, ऐन उसी वक्त आपके दोस्तों को लग रहा था, उनके घावों पर चींटियाँ चल रही हैं, पूछ लीजिएगा, नाकोहस से बाहर... माफ कीजिएगा... नाकोहस से बाहर तो अब क्या निकलेंगे... इस इमारत से बाहर निकल कर...'

पूछने की जरूरत नहीं थी, रघु और खुर्शीद के चेहरे ही गिरगिट की बात की ताईद कर रहे थे... जिस वक्त मुझे सुए का डर था, उसी वक्त इन लोगों को घाव पर चलती चींटियों का अहसास...

'ऐसी की तैसी तेरी, तेरे नाकोहस की' आतंक के भँवर में फँसते सुकेत ने प्रतिवाद में पूरी की पूरी ताकत झोंक दी, जोर से चिल्लाया, 'ऐसी की तैसी तेरी, घिनौना गिरगिट कहीं का, नाकोहस की दुम...'

इस ताकतवर चीख के साथ उसकी आवाज वापस आ गई, सुनने की ताकत भी, उस लेख के बाद जो हुआ था, उसे याद करने की कूवत भी... सुकेत को अपनी आवाज सुनते ही उम्मीद बँधी, बस बहुत हुआ, अब आँख खुली जाती है, पसीना जरूर भरा होगा बदन में, लेकिन इस दुःस्वप्न से मुक्ति तो मिल ही जाएगी...

बिस्तर से उतरना चाहा सुकेत ने... यह क्या? टाँगें साथ नहीं दे रहीं, घुटने मुड़ नही रहे, जैसे लॉक कर दिए गए हैं... ओ... कितना दर्द... क्यों? कैसे? हे भगवान... किसी

तरह उठ कर, चलने के नाम पर घिसटते हुए वह बाथरूम गया, हिम्मत बाँध कर, वैसे ही घिसटता सा किचन में पहुँचा, चाय बनाने के लिए खड़े रहना जैसे उम्र भर खड़े रहना हो गया, अकेला इनसान... करना तो सब कुछ खुद ही था, आदत भी थी, लेकिन आज जैसा दर्द... पहले कभी नहीं, तब भी नहीं जब पिटाई झेलनी पड़ी थी... किसी तरह वह हाथ में मोबाइल लिए बालकनी तक पहुँचा... सब कुछ सामान्य ही तो है यार... घुटनों में कुछ समस्या है तो चलते हैं ना डाक्टर के पास, किसी दोस्त के साथ, सबसे पहले तो रघु और खुर्शीद को ही बुला लेते हैं... मोबाइल पर नंबर डायल कर ही रहा था कि मैसेजों पर निगाह गई, कई मैसेज थे, आम तौर से जितने होते थे, उनसे बहुत ज्यादा... आशंकित सुकेत ने मैसेज बाक्स खोला, दर्जनों मैसेज, भेजने वाले वही चंद दोस्त... सूचना एक ही 'तुम्हारा फोन मिल ही नहीं रहा है, कहाँ गायब हो तुम, सुकेत, कल रात किसी ने खुर्शीद को सीढ़ियों से धकेल दिया है, रघु का मोटर-साइकिल एक्सीडेंट हो गया है, दोनों हस्पताल में हैं... आपरेशन दोनों के होने हैं, जैसे ही मैसेज देखो, फौरन पहुँचो...'

टाँगे ही नहीं, सुकेत की समूची देह अकड़ गई, पता नहीं रोमों से पसीना बह रहा है, या गुम घावों पर चींटियाँ चल रही हैं... टाँगों में दर्द जकड़न का है, या मगरमच्छों के चबाने का... चिड़ियों की चहचहाट कानों में गूँज रही है, या गिरगिट की ठंडी आवाज... रीढ़ की हड्डी पर किसी ने बर्फ की सिल्ली चिपका दी है... सारा शरीर सुन्न... उसके हाथ से मोबाइल फिसल गया, झुक कर उठाना असंभव, झुकने की तो बात क्या, कुर्सी पर बैठना नामुमकिन... घुटने सीधे ही रह सकते थे, वह खड़ा ही रह सकता था या लेटा। भयानक दर्द पर अब आतंक के नमक-मिर्च की बुरकी भी थी... सुकेत तड़प रहा था, लेकिन तड़प की चीख इनसानी आवाज के बजाय हाथी की चिंघाड़ सी क्यों... सुकेत ने थर-थर काँपते हुए देखा, बालकनी से नजर आती सड़क की ओर, सब कुछ बादस्तूर चल रहा था, धीरे-धीरे बढ़ता ट्रैफिक, तेजरफ्तारी, आवा-जाही, सब कुछ वैसे का वैसा... बस, वहाँ बीचोंबीच... मगरमच्छ इतमीनान से हाथी की टाँगें चबा रहे हैं... हाथी बस चीख सकता है, अपनी जगह से हिल नहीं सकता...

टूट रहे घुटनों पर किसी तरह देह को ढोता सुकेत खड़ा है - महानगरीय फ्लैट की बालकनी में नहीं... किसी पहाड़ी कगार के छोर पर... गिरा तो न जाने कहाँ जाकर गिरेगा... हड्डडियों का भी पता जाने चलेगा या नहीं...

हाथी की चिंघाड़ें करुण रुदन में बदल रही हैं, धीमी हो रही हैं, जमीन पर चिपकी देह में जो थोड़ी-बहुत हलचल थी, वह कम से कमतर होती जा रही है... आँखें आसमान बैकुंठ की ओर तकते तकते अब अपनी जगह से लुढ़कती जा रही हैं...